चतुर्थ राष्ट्रीय जल संगोष्ठी

2011

जल संसाधनों के प्रबंधन में नवीनतम तकनीकों का प्रयोग

16–17 दिसम्बर, 2011

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान
जलविज्ञान भवन
रूडकी–247667 (उत्तराखंड)

रेगिस्तान में जल और जन सहभागिता

यतवीर सिंह[1]
वरिष्ठ शोध सहायक

डी. एस. राठौर[1]
वैज्ञा. ई–2

[1]राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

रेगिस्तान का नाम आते ही जन साधारण के मन में स्वतः एक ऐसा दृश्य उत्पन्न होता है जहां दूर–दूर तक रेत ही रेत है, भीषण गर्मी है और जहां का वातावरण शुष्क है, और पानी का भारी अभाव है। जबकि स्थिति भिन्न है। उपयुक्त स्थितियां अनेक स्थानों पर हो सकती हैं किंतु संसार के रेगिस्तानों में विभिन्नता होती है जैसे कि रेगिस्तान में कहीं रेतीली समतल भूमि तो कहीं चट्टानों के दृश्य तो कहीं पर नमक की झीलों की भरमार है।

सामान्यतः रेगिस्तान का निर्धारण वार्षिक वर्षा की मात्रा, वर्षा के कुल दिनों, तापमान, नमी आदि कारकों के द्वारा किया जाता है। इस संबंध में सन् 1953 में यूनेस्को के लिए पेवरिल मीग्स द्वारा किया गया वर्गीकरण लगभग सर्वमान्य हैं। उन्होंने वार्षिक वर्षा के आधार पर विश्व के रेगिस्तानों को 3 विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

जन साधारण की भाषा में रेगिस्तान का मतलब पानी का न होना अर्थात ''जल ही जीवन है'' का सही अर्थ रेगिस्तान में ही समझ आता है। इसलिए कहा जा सकता है कि रेगिस्तान में जल ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि यदि प्रकृति ने रेगिस्तान को अत्यधिक षुश्क क्षेत्र बनाया है तो वहीं उसमें जीवन के स्थायित्व के लिए पर्याप्त जल श्रोतों की किसी न किसी रूप में व्यवस्था भी की है। जल प्रबन्धन प्रणालियों का यदि व्यवहारिक समता और समुदाय आधारित विकास करना है, तो जल संग्रहण की परम्परागत प्रणालियों का निर्माण आज भी प्रासंगिक है। जैसे हिमाचल और जम्मू–कश्मीर में 'कुहल' जैसी पारम्परिक प्रणालियां आज भी मौजूद हैं। रेगिस्तान में जल संरक्षण, जल उपयोग में दक्षता, जल का पुनरूपयोग, भू–जल पुनर्भरण और परिस्थितिकी के स्थायित्व की ओर अत्यधिक ध्यान देने की जरूरत है।

1.0 क्या हैं रेगिस्तान

रेगिस्तान का नाम आते ही जन साधारण के मन में स्वतः एक ऐसा दृश्य उत्पन्न होता है जहां दूर–दूर तक रेत ही रेत है, भीषण गर्मी है और जहां का वातावरण शुष्क है, और पानी का भारी अभाव है। जबकि स्थिति भिन्न है। उपयुक्त स्थितियां अनेक स्थानों पर हो सकती हैं किंतु संसार के रेगिस्तानों में विभिन्नता होती है जैसे कि रेगिस्तान में कहीं रेतीली समतल भूमि तो कहीं चट्टानों के दृश्य तो कहीं पर नमक की झीलों की भरमार है।

सामान्यतः रेगिस्तान का निर्धारण वार्षिक वर्षा की मात्रा, वर्षा के कुल दिनों, तापमान, नमी आदि कारकों के द्वारा किया जाता है। इस संबंध में सन् 1953 में यूनेस्को के लिए पेवरिल मीग्स द्वारा किया गया वर्गीकरण लगभग सर्वमान्य हैं। उन्होंने वार्षिक वर्षा के आधार पर विश्व के रेगिस्तानों को 3 विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

1. अति शुष्क भूमि जहां लगातार 12 महीनों तक वर्षा न होती हो तथा कुल वार्षिक वर्षा का औसत 25 मि.मी. से कम हो।
2. शुष्क भूमि जहां पर वर्षा 250 मि.मी. प्रति वर्ष से कम हो।
3. अर्धशुष्क भूमि जहां पर औसत वार्षिक वर्षा 250 से 500 मि.मी. से कम हो।

फिर भी केवल वर्षा की कमी ही किसी क्षेत्र को रेगिस्तान के रूप में निर्धारित नहीं कर सकती है। उदाहरण के लिए फोनिक्स व एरीजोना क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा का स्तर 250 मि.मी. से कम होता है लेकिन उन क्षेत्रों को रेगिस्तान की मान्यता प्राप्त है। दूसरी ओर अलास्का ब्रोक रेंज के उत्तरी ढलान में भी वार्षिक वर्षा का स्तर भी 250 मि.मी. से कम होता है, परंतु इन क्षेत्रों को रेगिस्तान नहीं माना जाता है।

2.0 विश्व के मुख्य रेगिस्तान

विश्व के मुख्य रेगिस्तानों का क्रमशः उनके नाम, प्रकार, स्थिति, आकार तथा क्षेत्रफल के साथ यहां संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।
1. अरब रेगिस्तान – गर्म, शुष्क तथा अतिशुष्क; अरब प्रायद्वीप, 23,30,000 वर्ग कि. मी. ।
2. अटाकामा – गर्म, अतिशुष्क और शुष्क; चिली; 1,40,000 वर्ग कि. मी. ।
3. आस्ट्रेलियन रेगिस्तान – गर्म, शुष्क व अर्धशुष्क; आस्ट्रेलियन, 15,00,000 वर्ग कि. मी. ।
4. चिहोहुआ रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; मैक्सिको, अमेरिका, 5,18,000 वर्ग कि. मी. ।
5. डेथ वैली रेगिस्तान – गर्म शुष्क; केलिफोर्निया, अमेरिका, 13,812 वर्ग कि. मी. ।
6. गोबी रेगिस्तान – ठंडा, शुष्क व अर्धशुष्क; चीन एवं मंगोलिया, 1300,000 वर्ग कि. मी. ।
7. ग्रेट बेसिन रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; अमेरीका, 4,09,000 वर्ग कि. मी. ।
8. कालाहारी रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; दक्षिण अफ्रीका, 500,000 वर्ग कि. मी. ।
9. काराकुम रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; तुकर्मनिस्तान, 29,7900 वर्ग कि. मी. ।
10. मोजावे रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; केलिफोर्निया, और नेवादा (अमेरीका) 65,000 वर्ग कि. मी. ।
11. नामीब रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; बोटस्वाना,पूर्वी नामीबिया तथा दक्षिणी अफ्रीका का उत्तरी भाग, 1,35,000 वर्ग कि.मी.।
12. नेगेव रेगिस्तान – गर्म, शुष्क; इज़राइल, 12,170 वर्ग कि. मी. ।
13. पेटागोनियन रेगिस्तान – ठंडा, शुष्क; अर्जेंटीना, 6,73,000 वर्ग कि. मी. ।
14. सहारा रेगिस्तान – गर्म, अति शुष्क, उत्तरी अफ्रीका, 8,600,000 वर्ग कि. मी. ।
15. सोनारन रेगिस्तान – गर्म, शुष्क, एरीजानो (अमेरीका) 275,000 वर्ग कि. मी. ।
16. ताकला–माकन रेगिस्तान – ठंडा, शुष्क; जिंजियागं राज्य, चीन, 3,27,000 वर्ग कि. मी. ।
17. थार रेगिस्तान – गर्म, अति शुष्क, भारत, पाकिस्तान, (200,000) वर्ग कि. मी. ।
यहां दिए गए रेगिस्तानों का क्षेत्रफल लगभग अनुमानित है, इनका क्षेत्रफल कम या अधिक हो सकता है।

2.1 भारत के थार रेगिस्तान

भारत में राजस्थान का थार रेगिस्तान संसार का सबसे रूखा रेगिस्तान होने के साथ ही सर्वाधिक बसावट वाला गर्म रेगिस्तान है। इतनी कठोर जलवायु के बावजूद यहां की विषम परिस्थितियों में जीवों की बहुत प्रजातियां पाई जाती हैं। थार रेगिस्तान विश्व का सातवां सबसे बड़ा रेगिस्तान हाने के साथ ही निःसंदेह हिंद–प्रशान्त क्षेत्र का सबसे कम आबादी वाला पारिस्थितिकी तंत्र है। इसे 'ग्रेट इंडियन डिजर्ट' के नाम से भी जाना जाता है। थार रेगिस्तान का नामकरण पाकिस्तान के सिंध प्रांत के एक जिले 'थारपारकर' के नाम पर दिया गया है। इसका क्षेत्रफल 259,000 वर्ग कि. मी है तथा इसका 69 प्रतिशत भाग भारत के उत्तर–पश्चिम भाग में स्थित है। यह भारत के चार प्रदेशों, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, तथा गुजरात में फैला हुआ है। इस रेगिस्तान का अधिकांश क्षेत्र, लगभग भारतीय थार क्षेत्र का 60 प्रतिशत हिस्सा पश्चिमी राजस्थान में स्थित है। थार रेगिस्तान भारत–ईराक शुष्क क्षेत्र हिस्सा है जो केस्पियन सागर तक फैला हैं। भारत–ईरान शुष्क प्रदेश के अंतर्गत अनेक रेगिस्तान आते हैं जिनमें से थार रेगिस्तान भी एक है।

यहां की जलवायु अत्यंत विषम है। यहां ठंड में तापमान हिमांक बिंदु तक चला जाता है। वहीं गर्मियों में पारा 50 डिग्री सेल्सियस पहुंच जाता है। थार रेगिस्तान में बारिश दक्षिण–पूर्वी मानसून के कारण हाती है। इस क्षेत्र में जुलाई से सितंबर के दौरान 100 से 500 मि. मी. तक बारिश हो सकती है। मई तथा जून के महीनो में यहां रेतीली आंधी आती है और जिसकी गति 150 कि. मी. प्रति घंटा तक होती है। भारतीय सीमा वाले थार रेगिस्तान में वर्षा की औसत वार्षिक मात्रा 345 मि. मी. तक होती है यहां वर्षा की मात्रा पश्चिमी भाग में 100 मि. मी. तक तो पूर्वी सीमा के निकट यह 400 मि. मी. तक हो जाती है। इन रेगिस्तान का कुछ क्षेत्र, सतलज नदी द्वारा सिंचित होता हैं। थार रेगिस्तान का अध्ययन करने पर स्पष्ट रूप से यह पता लगता है कि विस्तृत रूप से फैला यह स्थान भयावह होने के बावजूद मनमोहक भी है।

3.0 रेगिस्तान में जल

शुष्क तथा अर्धशुष्क जलवायु के क्षेत्रों में धरती की सतह का जल तथा धरती के अंदर स्थित जल का चक्र अधिकतर पूरा नहीं हो पाता है क्योंकि वर्षा से प्राप्त जल सतही मिट्टी की मोटी एवं शुष्क परत के अंदर समाने से पहले ही वाष्पीकरण द्वारा वाष्प में बदल जाता है। रेगिस्तान के ऐसे क्षेत्रों में धरती के अन्दर जल के श्रोतों का पुनर्भरण नहीं हो पाता है। वैसे रेगिस्तान में जल विभिन्न श्रोतों से मिलता हैं लेकिन किसी भी क्षेत्र विशेष के जल संसाधन प्रबंधन द्वारा जल चक्र की यह प्रक्रिया अवश्य ही चर्चा का विषय होना चाहिए। ग्रउंड वाटर रिज़रटवायर फॉर थ्रस्ट्री प्लेनेट, अर्थ साइंस फॉर सोसायटी फांउडेशन, लेडन, नीदरलैंड 2005, रेगिस्तान में जल ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कभी–कभी होने वाली वर्षा के अलावा रेगिस्तान में लगभग सदैव जल की मांग आपूर्ति से अधिक ही रहती है। वैसे जल एक सामूहिक समस्या हैं जिसका निवारण भी जनसहभागिता के द्वारा ही सम्भव है।

3.1 वर्षा

रेगिस्तान में वर्षा बहुत कम होती है। बल्कि अनिश्चित भी है। यहां अक्सर अनेक वर्ष बारिश के इंतजार में ही बीत जाते हैं। यहां पर वाष्पीकरण की दर वर्षा से प्राप्त हाने वाले जल की अपेक्षा अधिक होती है। रेगिस्तान में चलने वाली गर्म और शुष्क हवा यहां के पानी को जल्द ही वाष्पित कर देती हैं। कभी–कभी तो वर्षा के जल का धरती पर गिरने से पहले ही वाष्पन हो जाता है।

गर्म तथा ठंडे रेगिस्तान में वर्षा से प्राप्त जल की मात्रा में अन्तर होता है। गर्म रेगिस्तान में वर्षा बहुत कम होती है और यदि होती भी है तो सूखे के लंबे अंतराल के बाद। गर्म रेगिस्तानों की तुलना में ठंडे प्रदेशों में वर्षा अधिक होती है। रेगिस्तान में औसतन वर्षा 250 मि.मी. से कम ही होती है तथा अनेक क्षेत्रों में तो वर्षा की मात्रा इससे भी कहीं कम होती है लेकिन जब वर्षा होती है तो रेगिस्तान जीवन्त हो जाता है अल्प अवधि की बारिश से ही रेगिस्तान, संसाधनों से समृद्व हो जाता है। रेगिस्तानी पारिस्थितिकी के निर्माण में बारिश की अहम् भूमिका होती है।

3.2 नदियां और झरने

रेगिस्तानों में क्षणिक या कम अवधि की जल धाराएं, झरने आदि भी जल के श्रोत होते हैं। संसार में नदियों का बड़ा तंत्र ऐसे शुष्क प्रदेशों में होकर बहता है, उदाहरण के रूप में आस्ट्रेलिया का मरे डार्लिंग, उत्तरी अमेरिका का रियो ग्रांड नदी, ऐशिया में सिंधु तथा अफ्रीका में नील नदी। इन नदियों को बहिर्जन्य नदियां कहते हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति शुष्क प्रदेश या रेगिस्तान के बाहर होती हैं। रेगिस्तान से गुजरने की प्रक्रिया में इन नदियों से वाष्पीकरण द्वारा जल की विशाल मात्रा वाष्प में बदल जाती है। बहिर्जन्य नदियां रेगिस्तान में पौधों और जीवों को जल आपूर्ति करती हैं लेकिन जल के अथाह भंडार होने के कारण बर्हिजन्य नदियों की जल राशि अधिक प्रभावित नहीं होती है।

जो नदियां रेगिस्तानों से निकलती है उन्हें एंडोजीनस यानि अंतर्जात कहते हैं। इनकी उत्पत्ति धरती से निकले जल श्रोतों के कारण होती है। यहां की धरती का जल मुख्य रूप से झरझरी चट्टानों में अथवा चट्टानों की खोह में संचित होता है। रेगिस्तान की अंतर्जात नदियां कभी भी सागर तक नहीं पहुंच पातीं अपितु रेगिस्तान के थालों या द्रोणियों (Inland Basins) में पहुंच कर थम जाती हैं।

3.3 झीलें

रेगिस्तान में झीलें भी होती हैं। झीलें वहां बनती हैं जहां पर्याप्त बारिश या द्रोणियों से बर्फ पिघलने से आंतरिक प्रवाह की रचना होती हैं। रेगिस्तानी झीलें सामान्यतया उथली, अस्थाई और लवणयुक्त होती हैं। रेगिस्तानी झीलों के सूखने पर सतह के ऊपर नमक की कठोर पर्त निर्मित होती हैं।

उदयपुर की झील एक आंतरिक द्रोणी या संवृत द्रोणी झील है जो ऐसा जलसंग्रहण क्षेत्र है जहां से पानी बहता नहीं है। इस बंद क्षेत्र में हुई बारिश का पानी केवल वाष्पन द्वारा ही खत्म होता है। हालांकि यह अन्तः द्रोणी किसी भी जलवायु क्षेत्र में बन सकती है, लेकिन फिर भी यह अधिकतर गर्म रेगिस्तानों में स्थित होती हैं। गर्म रेगिस्तानों के इन संवृत क्षेत्रों में पानी का आना बहुत कम और वाष्पन दर अधिक होती है। इन सभी कारणों से झीलों में नमक और अन्य खनिज तत्वों की सांद्रता बढ़ती रहती है। जिससे अक्सर आंतरिक क्षेत्रों में बहुत अधिक मात्रा में नमक (जिन्हें नमक समतल, नमकीन झील, अम्ल या प्लाया भी कहते हैं) मिलता है।

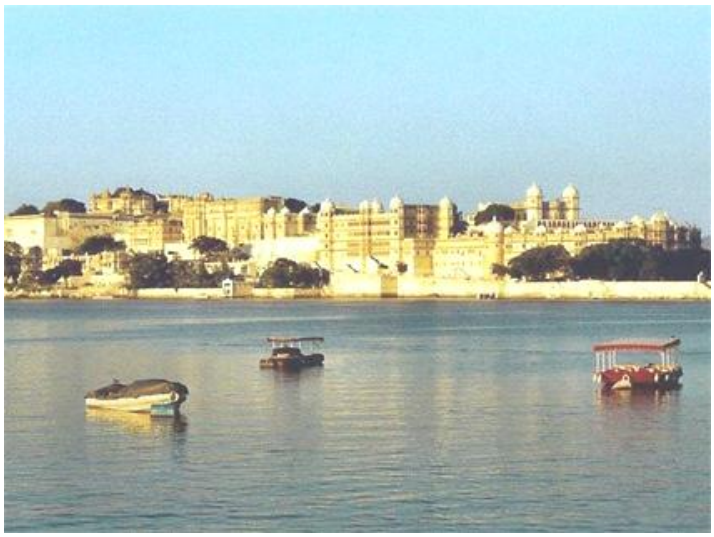

3.4 भू–जल

धरती के अंदर संचित जल को भू–जल कहते हैं। रेगिस्तान में वर्षा कम होने और मिट्टी की शुष्क प्रवृत्ति के कारण जल की बहुत थोड़ी मात्रा ही धरती के अंदर पहुंच पाती है अनुमानतः धरती के अंदर 10,000,000 (एक करोड़) घन कि. मी. जल का भंडार है जो वैश्विक स्तर पर वर्षा से प्राप्त वार्षिक जल का 200 गुना है। इस भू–जल भंडार की उपस्थिति का ज्ञान तब हो सका जब 1930 से मध्य पूर्व एशिया, मध्य एशिया तथा उत्तरी अफ्रीकी आदि क्षेत्रों में धरती के गर्भ में समाए तेल की खोज प्रारंभ हुई थी। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूनेप) और विश्व बैंक ने रेगिस्तान में भू–जल के सर्वेक्षण का प्रयास और भू–जल खनन के लिए स्थाई तकनीकों को विकसित करने का प्रयास किया है।

भू–जल बहुत ही उपयोगी और प्रचुर संसाधन है, लेकिन शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में यह विकास पूर्व की अवस्था में है। अर्ध शुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों के अंतर्गत कृषि क्षेत्र में सिंचाई के लिए भू–जल की मात्रा पूर्णतः समाप्त हो सकती है। इस बात को नहीं नकारा जा सकता कि भू–जल का दोहन न हो लेकिन उचित प्रबन्धन से इससे और अधिक लाभ लिया जा सकता है। नलकूप खनन तकनीकों के अनियंत्रित उपयोग एंव भू–जल दोहन की अत्याधिक दर बढ़ने से भू–जल का पर्याप्त पुनर्भरण नही हो रहा है। विशाल क्षेत्र में सिंचाई करने हेतु आधुनिक तकनीकी विकास ने 500 मीटर गहराई पर स्थित जल को बाहर निकालना संभव कर दिया है। यद्यपि भू–जल से विशाल क्षेत्रों को सिंचित किया जा रहा हैं। यह प्रकिया रेगिस्तानी पारिस्थितिकी के लिए संकट का कारण बन सकती है। उदराहरण के लिए सऊदी अरब के रियाद क्षेत्र में हजारों एकड़ क्षेत्र में भू–जल का उपयोग कृषि क्षेत्र को सिंचित करने में किया जा रहा हैं। भू–जल किसी भी राजनैतिक सीमाओं के बंधन से मुक्त है। इसलिए एक देश में किया गया भू–जल दोहन दूसरे देश के जल स्तर को प्रभावित कर सकता है। भविष्य में भू–जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए सरकारों व संस्थाओं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी जनसहभागिता हेतु सामंजस्य स्थापित करने की अतिआवश्यकता है।

4.0 रेगिस्तान में जनसहभागिता के द्वारा परम्परागत जल प्रबन्धन

जल प्रबन्धन की परम्परा प्राचीन काल से है। हड़प्पा नगर में खुदाई के दौरान जल संचयन प्रबन्धन व्यवस्था होने की जानकारी मिलती है। अभिलेखों में भी जल प्रबन्धन का पता चलता है। पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में भी जल संरक्षण परम्परा विकसित थी। पौराणिक ग्रन्थों में तथा जैन बौद्व साहित्य मे नहरों, तालाबों, बाधों, कुओं, और झीलों का विवरण मिलता हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र

में जल प्रबन्धन का उल्लेख मिलता है। राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है और जनसंख्या की अवधारणा से 8वें नम्बर पर हैं। देश की 5.5 प्रतिशत जनसंख्या राजस्थान में निवास करती है, परन्तु देश में उपलब्ध जल का मात्र 1.0% जल ही राजस्थान में प्राप्त है। इसलिए परम्परागत जल स्त्रोतों को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

अप्रैल, 2005 में मुझे राजस्थान जिला जोधपुर के तालुका बाप, ब्लाक फलोदी के कुछ स्थानों व गाँव आदि में घूमने का अवसर मिला। जहां दूर–दूर तक रेत ही रेत, भीष्ण गर्मी और धूल भरी आंधी ''लू'' और दूर–दूर तक कोई पेड़ नहीं, पानी का कोई श्रोत नहीं अर्थात भयंकर रेगिस्थान को नजदीक से देखने का अवसर मिला। गाँव नारायणपुरा के सर्वे के दौरान देखा गया कि यहां कोई नदी, झरना आदि श्रोत नहीं हैं, भू–जल तो है लेकिन पानी बहुत खारा है। जब वहां के निवासीयों से आवश्यक पानी के उपयोग हेतु क्या करते हैं के सम्बन्ध में जानकारी चाही तो तथ्य चौंकाने वाले थे। उन्होंने बताया कि यहां बारिश ही पानी का मुख्य श्रोत है और जब बरसात होती है तो हम अपने पारम्परिक तरीकों–टाँका, नाडी, बेरी एवं खडिन के द्वारा वर्षा जल का संरक्षण करके 8 से 10 महीनों के उपयोग हेतु जल का भंडारण कर लेते हैं। इस कार्य में गैर–सरकारी संस्था ग्रामीण विकास विज्ञान समिति जोधपुर, बहुत सहयोग करती हैं। जिस वर्ष बरसात कम या नहीं होती तो जीवन दूभर हो जाता है तब सरकार द्वारा हप्ते में एक बार टैंकर से पानी सप्लाई किया जाता है।

भारत में जल संसाधन की उपलब्धता एवं प्राप्ति की दृष्टि से काफी विषमताएँ मिलती हैं, अतः जल संसाधन की उपलब्धता के अनुसार ही जल संसाधन की प्रणालियाँ विकसित होती हैं। जैसे हिमालय में नदी से जल संचयन की प्रणाली विकसित हुई, जबकि राजस्थान में केवल वर्षा से ही जल संचयन किया जाता है। राजस्थान के लोगों ने जनसहभगिता के द्वारा पानी के कृत्रिम स्त्रोतों का निर्माण किया है, नाडी, तालाब, जोहड, बांध, सागर–सरोवर, कुआँ बावडी और टाँका आदि ये ही पानी के पारम्परिक स्त्रोत हैं। कुएँ का मालिक एक अकेला या परिवार होता था, जबकि बावडी धार्मिक दृष्टिकोण से निर्मित करवाई जाती थी। वह सभी लोगों के लिए होती थी। जनसहभगिता के द्वारा परम्परागत जल प्रबन्धन की प्रणालियों को विकसित किये जाने से ही इस समस्या का समाधान है।
सूखे के प्रभाव को न्यूनतम रखने के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान अपनाये गये दृष्टिकोण के कुछ अंश –

- मृदा और आर्द्रता संरक्षण के लिए पूंजी गहन इंजीनियरी कार्यों के बजाय सरल और कम लागत के ढांचों को प्रोत्साहित करना जिन्हें स्थानीय कौशलों की सहायता से थोड़े से समय में पूरा किया जा सकता है।
- सतही जल के संरक्षण और इष्टतम प्रयोग तथा भूगर्भीय जलाभृतों के पुनःभरण के प्रयोजन के लिए उपयुक्त जल संरक्षण ढांचा का निर्माण।
- गांवों में पुराने तालाबों/खेत तालाबों का नवीनीकरण और बहाली।
- सूखे के बचावीकरण में जन सहभगिता।

4.1 राजस्थान में परम्परागत जल स्त्रोत

तालाब

तालाब में वर्षा के पानी को एकत्रित किया जाता है। प्राचीन काल से तालाबों का अस्तिव रहा है। तालाबों के समीप कुआँ भी होता था। इनकी देख–रेख की जिम्मेदारी समाज की होती थी। धार्मिक तालाबों की सुरक्षा व सरंक्षण अच्छा हुआ है। अनेक तालाबों का शहरीकरण हो गया है। राज्य में स्थित तालाबों पर तत्काल ध्यान दिए जाने आवश्यकता हैं क्योंकि इनसे अनेक कुआँ एवं बावडियों को पानी मिलता हैं।

झीलें

राजस्थान में परम्परागत जल सरंक्षण सर्वाधिक झीलों में होता है। यहाँ पर प्रसिद्व झीले हैं। यहाँ के राजा, सेठों व बनजारों और जनता ने झीलों का निर्माण करवाया है। लालसागर झील, (1800 ई.) केलाना झील, (1872 ई.) तखतसागर झील, (1932 ई.) और उम्मेदसागर झील, (1931 ई.) ये आकार की दृष्टि से विशाल हैं। इनमें 70 करोड़ घन फिट जल तक आ सकता है। पुष्कर झील का धार्मिक महत्व है। झीलों का उपयोग सिंचाई और पेयजल के रूप में होता है।

नाडी

यह एक प्रकार का पोखर होता है। इसमें वर्षा का जल एकत्रित होता हैं। यह विशेषकर जोधपुर की तरफ होती हैं। 1520 ई. में राव जोधाजी ने सर्वप्रथम एक नाडी का निर्माण करवाया था। पश्चिमी राजस्थान के प्रत्येक गांव में नाडी मिलती है। रेतीले मैदानी क्षेत्रों में ये नाडियाँ 3 से 12 मीटर तक गहरी होती हैं। इनमें जल निकासी की व्यवस्था भी होती है। यह पानी 10 महीने तक चलता है। एल्युवियल मृदा (मिट्टी) वाले क्षेत्रों की नाडी आकार में बडी होती है। इनमें पानी 12 महीने तक एकत्र रह सकता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार नागौर, बाड़मेर व जैसलमेर में पानी की कुल आवश्यता का 38% पानी नाडी द्वारा पूरा किया जाता हैं अधिकांश नाडिया आधुनिक युग में अपना अस्तिव खोती जा रही हैं। इन्हें सुरक्षा की आवश्यकता है।

बावड़ी

राजस्थान में बावडी निर्माण की परम्परा भी प्राचीन है। प्राचीन काल, पूर्वमध्यकाल एवं मध्यकाल सभी में बावड़ियों के बनाये जाने की जानकारी मिलती है। बावडियां पीने के पानी, सिंचाई एवं स्नान के लिए महत्वपूर्ण जल स्त्रोत रही हैं। राजस्थान की बावडियाँ वर्षा जल संचय के काम आती हैं। कहीं–कहीं इनमें आवासीय व्यवस्था भी रहती थी। आज राजस्थान में बाबडियों की दशा ठीक नहीं है। इनका जीर्णोद्धार किया जाना चाहिए।

टांका

टांका राजस्थान में रेतीले क्षेत्र में वर्षा जल को संग्रहित करने की महत्वपूर्ण परम्परागत प्रणाली है। यह विशेषतौर से पेयजल के लिए प्रयोग होता है। यह सूक्ष्म भूमिगत सरोवर होता हैं। जिसको ऊपर से ढक दिया जाता है इसका निर्माण मिट्टी से भी होता है और सिमेण्ट से भी होता हैं। यहाँ का भू–जल लवणीय होता है इसलिए वर्षा जल टांके में इकट्ठा कर पीने के काम में लिया जाता है। वह पानी निर्मल होता है। इसका निर्माण सार्वजनिक रूप से लोगों द्वारा, सरकार द्वारा तथा निजी निर्माण स्वंय व्यक्ति द्वारा करवाया जाता है। पंचायत की जमीन पर निर्मित टांका सार्वजनिक होता है। जिसका प्रयोग पूरा गांव करता है। टांके का निर्माण जमीन या चबूतरे के ढ़लान के हिसाब से किया जाता है जिससे आंगन में वर्षा का जल संग्रहित किया जाता है, उसे आगोर या पायतान कहते हैं जो उस टांके का जल संग्रहक्षेत्र होता है। टांके के मुहाने पर सुराख होता है जिसके ऊपर जाली लगी रहती है, ताकि उसमें कचरा नहीं जा सके। पायतान का तल पानी के साथ कटकर नहीं जाए इस हेतु उसको राख, बजरी व मोरम से लीप कर रखते है। टांका 30–40 फिट तक गहरा होता है। पानी निकाकलने के लिए सीढियों का प्रयोग किया जाता है। ऊपर मीनारनुमा ढेकली बनाई जाती हैं जिससे पानी खींचकर निंकाला जाता है।

खडीन

खडीन का सर्वप्रथम प्रचलन 15वीं शताब्दी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मणों ने किया था। यह बहुउद्देशीय परम्परागत तकनीकी ज्ञान पर आधारित होती है। जैसलमेर जिले में लगभग 500 छोटी बडी खडीनें विकसित हैं जिनसे 1300 हैक्टेयर जमीन सिंचित की जाती हैं। वर्तमान में ईराक के लोग भी इस प्रणाली को अपनाये हुए हैं। यह ढालवाली भूमि के नीचे निर्मित होता है। इसके दो तरफ 2 से 4 मीटर के मिट्टी के बन्ध होते है। तीसरी तरफ पत्थर की पक्की चादर बनाई जाती है। खडीन का क्षेत्र विस्तार 5–7 किलोमीटर तक होता हैं। पानी की मात्रा अधिक होने पर पानी अगले खडीन में प्रवेश कर जाता है। सूखने पर पिछली खडीन की भूमि में नमी के आधार पर फसलें उगाई जाती हैं। मरू क्षेत्र में इन्हीं परिस्थितियों मे गेहूँ की फसल उगाई जाती है। खडीन तकनीकी द्वारा बंजर भूमि को भी कृषि योग्य बनाया जाता है। जिस स्थान पर पानी एकत्रित होता है उसे खडीन तथा इसे रोकने वाले बांध को खडीन बांध कहते है। खडीनों में बहकर आने वाला जल अपने साथ उर्वरक मिट्टी बहाकर लाता है जिससे उपज अच्छी होती है। खडीनों के नीचे ढलान में कुआं भी बनाया जाता है जिसमें खडीन से रिस कर पानी आता रहता है, जो पीने के उपयोग में आता है जल प्रबंधन कार्यक्रम मे परम्परागत निर्मित प्राचीन खडीनों का वैज्ञानिक रख–रखाव होना चाहिए तथा नई खडीनें पारम्परिक तककनीकी ज्ञान के सहारे निर्मित की जानी चाहिए। राजस्थान सरकार ने नई खडीने बनवाने की योजना बनाई है।

टोबा

टोबा एक महत्वपूर्ण पारम्परिक जल प्रबन्धन है, यह नाडी के समान आकृति वाला लेकिन अधिक गहरा होता है। सघन संरचना वाली भूमि, जिसमें पानी का रिसाव कम होता है, टोबा निर्माण के लिए यह उपयुक्त स्थान माना जाता है। इसका ढलान नीचे की ओर होना चाहिए। टोबा के आस–पास नमी होने के कारण प्राकृतिक घास उग आती है जिसे जानवर चरते हैं। प्रत्येक गाँव में जनसंख्या के हिसाब से टोबा बनाये जाते हैं प्रत्येक जाति के लोग अपने टोबा पर झोपडियां बना लेते हैं। टोबा में वर्ष भर पानी उपलब्ध रहता है। टोबा में पानी कभी–कभी कम हो जाता है, तो आपसी सहमति से जल का समुचित प्रयोग करते हैं। एक टोबा के जल का उपयोग सामान्यतः बीस परिवार तक कर सकते हैं।

बेरी या कुई

कुई या बेरी सामान्यतः तालाब के पास बनाई जाती है। जिसमें तालाब का पानी रिसता हुआ जमा होता है। कुई मोटे तोर पर 10से 12 मीटर गहरी होती है। इनका मुँह लकड़ी के फन्टों से ढका रहता हैं ताकि किसी के गिरने का डर न रहे। पश्चिमी राजस्थान में इनकी अधिक संख्या है। भारत–पाक सीमा से लगे जिलों में इनकी मौजूदगी अधिक है। 1987 के भयंकर सूखे के समय सारे तालाबों का

पानी सूख गया था, तब भी बेरियों में पानी आ रहा था। परम्परागत जल–प्रबन्धन के अन्तर्गत स्थानीय ज्ञान की आपात व्यवस्था कुई या बेरी में देखी जा सकती है। खेत के चारों तरफ मेंड ऊँची कर दी जाती है जिससे बरसाती पानी जमीन में समा जाता है। खेत के बीच एक छिछला कुआँ खोद देते है जहां इस पानी का कुछ हिस्सा रिसकर जमा हो जाता है और इसे काम में लिया जाता है।

4.2 परम्परागत जल स्त्रोतों की उपयोगिता

- परामपरिक जल प्रबन्धन का पुनरूद्धवार कर राज्य में कृषि अर्थ व्यवस्था का बढाया जा सकता हं।
- प्राकृतिक आपदा के समय इस प्रकार के जल प्रबन्धन से समस्या का सामना किया जा सकता है।
- पारम्परिक जल स्त्रोतों के माध्यम से सूखे व बाढ़ जैसी विपदा के समय सक्षम बन सकते है।
- परम्परागत जल प्रबन्धन की प्रणाली कृषि का एक स्तम्भ बन सकती हैं।
- परम्परागत जल स्त्रोतों की पुनःस्थापना से नयी पीढ़ी के लिए रोजगार के अवसर मिलेंगे।

4.3 परम्परागत जल स्त्रोतों की वर्तमान में प्रासंगिकता

आधुनिक व्यवस्थाएं पर्यावरण का दोहन करती हैं। भारत के 80% हिस्से में तीन महीनों में ही 80% बरसात हो जाती हैं। बरसात का बहुत पानी नदियों के माध्यम से बह जाता है जरूरत इस बात की है कि वर्षा के पानी को स्थानीय जरूरतों और भौगोलिक स्थितियों के हिसाब से संग्रहित किया जाना चाहिए। जल संचय, संरक्षण और प्रबन्धन हमारे यहां सदियों पुराना हैं। राजस्थान में खडीन, कुंड और नाडी महाराष्ट्र में बंधारा और ताल, हिमाचल में कुहल, तमिलनाडू में इरी, केरल में सुरंगम, जम्मू क्षेत्र में पोखर और कर्नाटक मे कट्टा आदि जल प्रबन्धन के प्राचीन परम्परागत जल स्त्रोत हैं। ये सभी स्त्रोत वहां की पारिस्थितिकी और संस्कृति की अनुरूपता के आधार पर हैं। साक्ष्यों से पता चलता है कि प्राचीन भारत के शासकों ने जल संचय की बेहतर प्रणालियाँ को अपनाते हुए जल और सिंचाई की आपूर्ति के लिए नहरों को न केवल निर्माण करवाया था, बल्कि उनके रख रखाव हेतु आवश्यक प्रशासनिक व्यवस्थाएं भी विकसित की थी। पारम्परिक प्रणालियों के सामुदायिक जल प्रबन्धन के कारण हर व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता पूरी होती थी इन जल प्रबन्ध प्रणालियों की आज अधिक प्रासंगिकता है जिन्होनें सूखे या अकाल के लम्बे दौर में समुदायों को जीवन दान दिया है।

पानी किसी भी क्षेत्र के आर्थिक विकास का बडा आधार है। जल की आधुनिक प्रणाली में कमी तब महसूस होती है, जब बिजली नहीं आती, नल में पानी सूखता है, बांध में मिट्टी भरने से पानी क्षमता नहीं रहती। उस समय पारम्परिक प्रणालियां याद आती है। देश के बहुत बड़े हिस्से में आधुनिक प्रणाली भारी लागत की वजह से पहुंच ही नहीं सकती। अतः वहां लोग पीने के जल व सिंचाई के लिए परम्परागत जल प्रबंधन पर निर्भर है।

जन साधारण की भाषा में रेगिस्तान का मतलब पानी का न होना अर्थात ''जल ही जीवन है'' का सही अर्थ रेगिस्तान में ही समझ आता है। इसलिए कहा जा सकता है कि रेगिस्तान में जल ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट हैं कि यदि प्रकृति ने रेगिस्तान को अत्यधिक शुष्क क्षेत्र बनाया है तो वहीं उसमें जीवन के स्थायित्व के लिए पर्याप्त जल श्रोतों की किसी न किसी रूप में व्यवस्था भी की है। जल प्रबन्धन प्रणालियों का यदि व्यवहारिक समता और समुदाय आधारित विकास करना है, तो जल संग्रहण की परम्परागत प्रणालियों का निर्माण आज भी प्रासंगिक है। जैसे हिमाचल और जम्मू–कश्मीर में 'कुहल' जैसी पारम्परिक प्रणालियां आज भी मौजूद है। रेगिस्तान में जल संरक्षण, जल उपयोग में दक्षता, जल का पुनरूपयोग, भू–जल पुनर्भरण और परिस्थितिकी के स्थायित्व की ओर अत्यधिक ध्यान देने की जरूरत है।

सन्दर्भ

1. विज्ञान प्रसार, सुबोध महंती।
2. यूनेस्को, पेवरिल मीग्स, 1953।
3. ग्राउंड वाटर रिज़रवायर फॉर थ्रस्टी प्लेनेट, अर्थ सांइस फॉर सोसायटी फांउडेशन, लेडन नीदरलैंड, 2005।
4. आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान अपनाया गया दृष्टिकोण।
5. हार्वेस्टींग दा रेंस इन थार, ग्रामीण विकास विज्ञान समिति जोधपुर, प्रमोद कुलकर्नी, 2003।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान
जलविज्ञान भवन
रूड़की–247 667 (उत्तराखंड)

दूरभाष : 01332–272106
फैक्स : 01332–272123
ई–मेल : nihmail@nih.ernet.in
वेब : www.nih.ernet.in